

Chapter तीन

हिरण्यकशिपु की अमर बनने की योजना

इस अध्याय में बताया गया है कि हिरण्यकशिपु ने भौतिक लाभ के लिए कठोर तपस्या की और इस तरह उसने ब्रह्माण्ड भर में उपद्रव मचा दिया। यहाँ तक कि इस ब्रह्माण्ड के प्रमुख व्यक्ति ब्रह्मा भी कुछ-कुछ विचलित हो गये और वे स्वयं यह देखने गये कि हिरण्यकशिपु इतनी कठोर तपस्या क्यों कर रहा है।

हिरण्यकशिपु अमर होना चाहता था। वह चाहता था कि न तो वह किसी के द्वारा जीता जा सके, न जरा तथा रोग से पीड़ित हो, न ही किसी प्रतिद्वन्दी द्वारा सताया जाये। इस प्रकार वह समस्त ब्रह्माण्ड का परम शासक बनना चाहता था। इस कामना से वह मन्दार पर्वत की घाटी में गया और वहाँ उग्र तपस्या तथा ध्यान करने लगा। हिरण्यकशिपु को ऐसी तपस्या में लगा देखकर देवतागण अपने अपने घर लौट आये, किन्तु जब हिरण्यकशिपु इस तरह से तपस्या में संलग्न था तो उसके सिर से एक प्रकार की अग्नि प्रज्वलित हो उठी जिससे अखिल ब्रह्माण्ड के निवासी जिसमें पशु-पक्षी तथा देवता सभी सम्मिलित थे उद्विग्न हो उठे। जब सारे उच्च तथा निम्न लोक तप्त हो जाने के कारण रहने के योग्य नहीं रहे तो सारे देवता विचलित होकर स्वर्गलोक के अपने आवासों को छोड़-छोड़कर ब्रह्माजी से भेंट करने तथा अनावश्यक ताप को कम करने के लिए प्रार्थना करने गये। देवताओं ने ब्रह्माजी से

हिरण्यकशिपु की महत्वाकांक्षा बतलाई कि वह अपने जीवन की अल्पायु को जीत कर अमर होना चाहता है और सारे लोकों का, यहाँ तक कि ध्रुव लोक का भी स्वामी बन जाना चाहता है।

हिरण्यकशिपु के एकान्त ध्यान का प्रयोजन सुनकर ब्रह्माजी अपने साथ महर्षि भृगु तथा दक्ष जैसे महापुरुषों को लेकर हिरण्यकशिपु से भेंट करने गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने कमण्डल से हिरण्यकशिपु के सिर पर जल छिड़का।

दैत्यराज हिरण्यकशिपु ने इस ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्माजी के समक्ष अपना सिर झुकाकर उन्हें बारम्बार सादर नमस्कार किया तथा प्रार्थना की। जब ब्रह्माजी ने वर देना स्वीकार कर लिया तो उसने प्रार्थना की कि वह किसी जीव द्वारा न तो किसी ढके या खुले स्थान में ये मारा जाये, न दिन में या रात में मरे, न वह किसी हथियार से, स्थल में या वायु में मारा जाये, न वह किसी मनुष्य, पशु देवता या अन्य जीवित या मृत प्राणी द्वारा मारा जाये। उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर अपनी श्रेष्ठता के लिए भी प्रार्थना की तथा उसने अणिमा, लघिमा इत्यादि आठों योग-सिद्धियों के लिए भी प्रार्थना की।

श्रीनारद उवाच

हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ।

आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—नारद मुनि ने कहा; हिरण्यकशिपुः—दैत्यराज हिरण्यकशिपु; राजन्—हे राजा युधिष्ठिर; अजेयम्—किसी शत्रु द्वारा न जीता जा सकने योग्य; अजर—जरा या व्याधि से रहित; अमरम्—अमर; आत्मानम्—स्वयं; अप्रतिद्वन्द्वम्—किसी प्रतिद्वन्दी या विरोधी से विहीन; एक-राजम्—ब्रह्माण्ड का एकछत्र राजा, चक्रवर्ती; व्यधित्सत—बनना चाहता था।

नारद मुनि ने महाराज युधिष्ठिर से कहा : दैत्यराज हिरण्यकशिपु अजेय तथा वृद्धावस्था एवं शरीर की जर्जरता से मुक्त होना चाहता था। वह अणिमा तथा लघिमा जैसी समस्त योग-सिद्धियों को प्राप्त करना, मृत्युरहित होना और ब्रह्मलोक समेत अखिल विश्व का एकछत्र राजा बनना चाहता था।

तात्पर्य : असुरों द्वारा सम्पन्न तपस्या के लक्ष्य ऐसे ही होते हैं। हिरण्यकशिपु ब्रह्माजी से ऐसा वरदान प्राप्त करना चाहता था जिससे वह भविष्य में ब्रह्माजी के धाम को जीतने में समर्थ हो सके। इसी प्रकार एक अन्य दैत्य ने शिवजी से वर प्राप्त किया, किन्तु बाद में वह उसी वर से शिवजी को मारना चाहता था। इस तरह स्वार्थी व्यक्ति आसुरी तपस्या द्वारा अपने ही उपकारी को मारना चाहता है

जब कि वैष्णव भगवान् का नित्य दास बना रहना चाहता है और भगवान् के पद को कभी भी प्राप्त करना नहीं चाहता। सायुज्य मुक्ति के द्वारा, जिसकी कामना प्रायः असुरगण करते हैं, कोई मनुष्य भगवान् के अस्तित्व में तदाकार हो जाता है, या कभी-कभी कोई अद्वैतवाद का लक्ष्य प्राप्त कर लेता है किन्तु उसे पुनः इस संसार में संघर्ष करने के लिए नीचे गिरना पड़ता है।

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ।

ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने (हिरण्यकशिपु ने); तेपे—सम्यन्न किया; मन्दर-द्रोण्याम्—मन्दर पर्वत की घाटी में; तपः—तपस्या; परम—अत्यधिक; दारुणम्—कठिन; ऊर्ध्व—ऊपर उठाये; बाहुः—बाहें; नभः—आकाश की ओर; दृष्टिः—अपनी दृष्टि; पाद-अङ्गुष्ठ—अपने पाँव के अँगूठे से; आश्रित—सहारा लेकर; अवनिः—पृथ्वी पर।

हिरण्यकशिपु ने मन्दर पर्वत की घाटी में अपने पाँव के अँगूठे के बल भूमि में खड़े होकर, अपनी भुजाएँ ऊपर किये तथा आकाश की ओर देखते हुए अपनी तपस्या प्रारम्भ की। यह अवस्था अतीव कठिन थी, किन्तु सिद्धि प्राप्त करने के लिए उसने इसे स्वीकार किया।

जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ।

तस्मिस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

जटा-दीधितिभिः—सिर पर जटा के तेज से; रेजे—चमक रहा था; संवर्त-अर्कः—प्रलयकालीन सूर्य; इव—सदृश; अंशुभिः—किरणों से; तस्मिन्—जब वह (हिरण्यकशिपु); तपः—तपस्या में; तप्यमाने—लगा था; देवाः—सारे देवता जो हिरण्यकशिपु के आसुरी कृत्यों को देखने के लिए सारे ब्रह्माण्ड में घूम रहे थे; स्थानानि—अपने-अपने स्थानों को; भेजिरे—लौट गये।

हिरण्यकशिपु के जटाजूट से प्रलयकालीन सूर्य की किरणों के समान प्रकाशमान तथा असह्य तेज प्रकट हुआ। ऐसी तपस्या देखकर सारे देवता, जो अभी तक सारे लोकों में भ्रमण कर रहे थे, अपने-अपने घरों को लौट गये।

तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः ।

तीर्यगूर्ध्वमधो लोकान्प्रातपद्विष्वगीरितः ॥ ४ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; मूर्ध्नः—सिर से; समुद्भूतः—उत्पन्न हुआ; स-धूमः—धुआँ के साथ; अग्निः—आग; तपः-मयः—कठिन तपस्या के कारण; तीर्यक्—अगल-बगल; ऊर्ध्वम्—ऊपर; अधः—नीचे; लोकान्—सारे लोक; प्रातपत्—गर्म हो उठे; विष्वक्—चारों ओर; ईरितः—फैली हुई।

हिरण्यकशिपु की कठिन तपस्या के कारण उसके सिर से अग्नि प्रकट हुई और यह अग्नि

अपने धुएँ समेत आकाश भर में फैल गई। उसने ऊर्ध्व तथा अधः लोकों को घेर लिया जिससे वे सभी अत्यन्त गर्म हो उठे।

चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्दीपाद्रिश्चाल भूः ।

निपेतुः सग्रहास्तारा जञ्चलुश्च दिशो दश ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

चुक्षुभुः—विचलित हो उठे; नदी-उदन्वन्तः—सारी नदियाँ तथा समुद्र; स-द्वीप—द्वीपों समेत; अद्रिः—पर्वत; चचाल—हिलने लगे; भूः—भूमण्डल की सतह; निपेतुः—गिर पड़े; स-ग्रहाः—ग्रहों सहित; ताराः—तारे; जञ्चलुः—प्रज्वलित हो उठीं; च—भी; दिशः दश—दसों दिशाएँ।

उसकी कठिन तपस्या के बल से सारी नदियाँ तथा सारे समुद्र क्षुब्ध हो उठे, भूमण्डल की सतह अपने पर्वतों तथा द्वीपों समेत हिलने लगी और तारे तथा ग्रह टूट कर गिर पड़े। सारी दिशाएँ प्रज्वलित हो उठीं।

तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ।

धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते ।

दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

तेन—उस (तपस्या की अग्नि) के द्वारा; तप्ताः—झूलसे; दिवम्—उच्च लोकों में अपने रिहायशी मकान; त्यक्त्वा—छोड़कर; ब्रह्म-लोकम्—ब्रह्मा के रहने वाले लोक को; ययुः—गये; सुराः—देवतागण; धात्रे—इस ब्रह्माण्ड के प्रधान ब्रह्माजी तक; विज्ञापयाम् आसुः—निवेदन किया; देव-देव—हे देवताओं में प्रमुख; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; दैत्य-इन्द्र-तपसा—दैत्यराज हिरण्यकशिपु द्वारा की जा रही कठोर तपस्या के द्वारा; तप्ताः—जले हुए; दिवि—स्वर्गलोक में; स्थातुम्—रुकने के लिए; न—नहीं; शक्नुमः—हम सब समर्थ हैं।

हिरण्यकशिपु की कठोर तपस्या से झूलसने तथा अत्यन्त विचलित होने के कारण समस्त देवताओं ने अपने रहने के लोक छोड़ दिये और ब्रह्मा के लोक को गये जहाँ उन्होंने स्रष्टा को इस प्रकार सूचित किया—“हे देवताओं के स्वामी, हे ब्रह्माण्ड के प्रभु, हिरण्यकशिपु की कठोर तपस्या के कारण उसके शिर से निकलने वाली अग्नि के कारण हम लोग इतने उद्विग्न हैं कि हम अपने लोकों में रह नहीं सकते, अतएव हम आपके पास आये हैं।”

तस्य चोपशमं भूमन्विधेहि यदि मन्यसे ।

लोका न यावन्नद्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभिभूः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसके; च—निस्सन्देह; उपशमम्—समाप्ति; भूमन्—हे महापुरुष; विधेहि—कृपया करें; यदि—यदि; मन्यसे—आप सही समझते हैं; लोकाः—विभिन्न लोकों के सारे निवासी; न—नहीं; यावत्—तब तक; नदृक्ष्यन्ति—नष्ट हो जाएँगे; बलि-हाराः—पूजा के प्रति आज्ञाकारी; तव—तुम्हारी; अभिभूः—हे समस्त ब्रह्माण्ड के प्रधान।

हे महापुरुष, हे ब्रह्माण्ड के प्रधान, यदि आप उचित समझें तो इन सारे उत्पातों को, जो सब कुछ विनष्ट करने के उद्देश्य से हो रहे हैं, कृपा करके रोक दें जिससे आपकी आज्ञाकारी प्रजा का संहार न हो।

तस्यायं किल सङ्कल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ।

श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितम् ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तस्य—उसका; अयम्—यह; किल—निश्चय ही; सङ्कल्पः—दृढ़ निश्चय; चरतः—सम्पन्न करने वाला; दुश्चरम्—अत्यन्त कठिन; तपः—तपस्या; श्रूयताम्—सुन लें; किम्—क्या; न—नहीं; विदितः—ज्ञात; तव—तुम्हारा; अथापि—अब फिर भी; निवेदितम्—निवेदन किया गया।

हिरण्यकशिपु ने अत्यन्त कठिन तपस्या का व्रत ले रखा है। यद्यपि आपसे उसकी योजना छिपी नहीं है, तो भी हम जिस रूप में उसके मन्तव्यों का निवेदन कर रहे हैं, कृपा करके उन्हें सुन लें।

सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ।

अध्यास्ते सर्वधिष्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ ९ ॥

तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ।

कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ १० ॥

शब्दार्थ

सृष्ट्वा—सृजन करके; चर—चल; अचरम्—तथा अचल; इदम्—यह; तपः—तपस्या का; योग—तथा योग शक्ति का; समाधिना—समाधि के अभ्यास द्वारा; अध्यास्ते—स्थित है; सर्व-धिष्येभ्यः—स्वर्गलोक समेत समस्त लोकों की अपेक्षा; परमेष्ठी—ब्रह्माजी ने; निज-आसनम्—अपना सिंहासन; तत्—अतएव; अहम्—मैं; वर्धमानेन—वृद्धि के कारण; तपः—तपस्या; योग—योग शक्ति; समाधिना—तथा समाधि से; काल—समय का; आत्मनोः—तथा आत्मा का; च—तथा; नित्यत्वात्—नित्यता से; साधयिष्ये—प्राप्त करेगा; तथा—इतना; आत्मनः—अपने लिए।

“इस ब्रह्माण्ड में परमपुरुष ब्रह्माजी ने अपना उच्च पद कठिन तपस्या, योगशक्ति तथा समाधि द्वारा प्राप्त किया है। फलस्वरूप इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के बाद वे इसके सर्वाधिक पूज्य देवता बने हैं। चूँकि मैं शाश्वत हूँ और काल भी शाश्वत है, अतएव मैं ऐसी ही तपस्या, योगशक्ति तथा समाधि के लिए अनेक जन्मों तक प्रयास करूँगा और वह स्थान ग्रहण करूँगा जो ब्रह्माजी ने प्राप्त किया है।”

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु का संकल्प ब्रह्माजी के पद को ग्रहण करने का था लेकिन यह असम्भव था क्योंकि ब्रह्माजी की आयु अत्यन्त दीर्घ थी। जैसाकि *भगवद्गीता* (८.१७) में पुष्टि की गई है—
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्षद् ब्रह्मणो विदुः—ब्रह्मा का एक दिन एक हजार युग के तुल्य है। ब्रह्मा की आयु अत्यन्त दीर्घ है, फलस्वरूप हिरण्यकशिपु के लिए उनका पद प्राप्त कर सकना असम्भव था। फिर भी उसका निर्णय था कि चूँकि आत्मा तथा काल दोनों शाश्वत हैं अतएव यदि वह उस पद को एक जीवनकाल में नहीं प्राप्त कर सकता तो वह जन्म-जन्मांतर तपस्या करता रहेगा, जिससे कभी न कभी उसे वह पद प्राप्त हो सके।

अन्यथेदं विधास्येऽहमयथा पूर्वमोजसा ।

किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अन्यथा—बिल्कुल उल्टा; इदम्—यह ब्रह्माण्ड; विधास्ये—बना दूँगा; अहम्—मैं; अयथा—अनुपयुक्त; पूर्वम्—पहले जैसा; ओजसा—अपनी तपस्या के बल से; किम्—क्या लाभ; अन्यैः—दूसरे के साथ; काल-निर्धूतैः—काल के साथ समाप्त होने वाला; कल्प-अन्ते—युग के अन्त में; वैष्णव-आदिभिः—ध्रुवलोक या वैकुण्ठ लोक जैसे लोकों से।

“अपनी कठोर तपस्या से मैं पुण्य तथा पाप कर्मों के फलों को उलट दूँगा। मैं इस संसार की समस्त स्थापित प्रथाओं को पलट दूँगा। कल्प के अन्त में ध्रुवलोक भी मिट जाएगा। अतएव इसका क्या लाभ है? मैं तो ब्रह्मा के पद पर बना रहना अधिक पसन्द करूँगा।”

तात्पर्य : देवताओं ने ब्रह्माजी को हिरण्यकशिपु का आसुरी संकल्प कह सुनाया। उन्होंने सूचित किया कि हिरण्यकशिपु सारे मान्य सिद्धान्तों को पलट देना चाहता है। लोग इस भौतिक जगत में कठिन तपस्या करके स्वर्गलोक चले जाते हैं लेकिन हिरण्यकशिपु नहीं चाहता था कि लोग स्वर्ग में सुखी रहें, क्योंकि देवता स्वर्ग में रहते हुए भी उसके विरुद्ध कूटनीतिक विचार रखते थे। वह चाहता था कि जो लोग इस संसार में सताये जाते हैं, वे स्वर्ग में भी दुखी रहें। निस्सन्देह, वह ऐसा उत्पीडन सर्वत्र चालू करना चाह रहा था। कोई यह पूछ सकता है कि यह कैसे सम्भव होगा क्योंकि विश्व की व्यवस्था तो अनन्त काल से चली आ रही है? किन्तु हिरण्यकशिपु को घमण्ड था कि वह अपनी तपस्या से सब कुछ कर लेगा। यहाँ तक कि वह वैष्णवों की स्थिति को असुरक्षित बना देना चाहता था। ये कतिपय लक्षण हैं उसके आसुरी संकल्प के।

इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ।
विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; शुश्रुम—हमने सुना है; निर्बन्धम्—प्रबल संकल्प; तपः—तपस्या; परमम्—अत्यन्त कठोर; आस्थितः—स्थित; विधत्स्व—कृपया कार्यवाही करें; अनन्तरम्—जल्दी से जल्दी; युक्तम्—उपयुक्त; स्वयम्—अपने से, स्वयं; त्रि-भुवन-ईश्वर—हे तीनों संसारों के स्वामी ।

हे प्रभु, हमने विश्वस्त सूत्रों से सुना है कि हिरण्यकशिपु आपका पद प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या में जुटा हुआ है। आप तीनों लोकों के स्वामी हैं। आप जैसा उचित समझें वैसा अविलम्ब करें।

तात्पर्य : भौतिक जगत में स्वामी अपने नौकर को एक पद प्रदान करता है, किन्तु वह सदैव योजना बनाता रहता है कि किस प्रकार अपने स्वामी का पद छीन ले। इतिहास में इसके अनेक दृष्टान्त प्राप्त हैं। विशेष रूप से भारत में मुसलमानों के शासन काल में अनेक नौकरों ने षड्यंत्र द्वारा अपने स्वामियों के पद हथिया लिये। चैतन्य साहित्य से यह पता चलता है कि सुबुद्धि राय नामक एक बड़े जमींदार ने एक मुसलमान लड़के को नौकर के रूप में रखा था। वह इस लड़के को अपने पुत्र की तरह मानता था और जब वह कभी कुछ चुराता तो उसका स्वामी दण्ड देने के लिए उसे बेंत से मारता था। इससे उस लड़के की पीठ पर एक निशान बन गया था। बाद में जब वह लड़का कुटिल उपायों से हुसने शाह नाम से बंगाल का नवाब बन गया तो एक दिन उसकी पत्नी ने इस निशान को देखा और इसके विषय में पूछा। नवाब ने उत्तर दिया कि बचपन में वह सुबुद्धिराय का नौकर था और उन्होंने किसी उपद्रव के लिए उसे दण्ड दिया था। यह सुनकर नवाब की पत्नी तत्क्षण क्रुद्ध हो उठी और उसने अपने पति से अनुरोध किया कि वह सुबुद्धि राय की हत्या कर दे। किन्तु नवाब हुसेन शाह सुबुद्धि राय का अत्यन्त कृतज्ञ था, अतएव उसने हत्या करने से मना कर दिया। किन्तु जब उसकी पत्नी ने अनुरोध किया कि वह सुबुद्धि राय को मुसलमान बना ले तो नवाब राजी हो गया। उसने अपनी सुराही से कुछ जल निकाल कर सुबुद्धि राय पर छिड़क दिया और यह घोषित कर दिया कि सुबुद्धि राय अब मुसलमान हो गया है। बात यह है कि यही नवाब पहले सुबुद्धि राय का सामान्य नौकर था, किन्तु येन-केन-प्रकारेण वह बंगाल के नवाब का श्रेष्ठ पद प्राप्त करने में सक्षम रहा। ऐसा है यह भौतिक संसार। प्रत्येक व्यक्ति नाना प्रकार की युक्तियों से स्वामी बनना चाहता है, यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति अपनी इन्द्रियों का दास है। इस पद्धति पर चल कर प्रत्येक जीव भले ही अपनी इन्द्रियों का दास क्यों न हो,

सम्पूर्ण संसार का स्वामी बनना चाहता है। हिरण्यकशिपु इसका ज्वलन्त उदाहरण था और देवताओं ने उसके इन मन्तव्यों की जानकारी ब्रह्माजी को दी।

तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ।

भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तव—आपका; आसनम्—सिंहासन; द्विज—ब्राह्मण संस्कृति का अथवा ब्राह्मणों का; गवाम्—गौवों का; पारमेष्ठ्यम्—सर्वोच्च, परम; जगत्-पते—हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी; भवाय—उन्नति के लिए; श्रेयसे—चरम सुख के लिए; भूत्यै—ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए; क्षेमाय—पालन तथा सौभाग्य के लिए; विजयाय—विजय तथा बढ़ती प्रतिष्ठा के लिए; च—तथा।

हे ब्रह्माजी, निश्चय ही आपका पद इस ब्रह्माण्ड के सभी लोगों के लिए, विशेष रूप से ब्राह्मणों तथा गायों के लिए, अत्यन्त कल्याणप्रद है। इससे ब्राह्मण-संस्कृति तथा गौ-सुरक्षा को अधिकाधिक महिमामंडित किया जा सकता है और इस प्रकार सभी प्रकार के भौतिक सुख, ऐश्वर्य तथा सौभाग्य स्वतः वृद्धि करेंगे। किन्तु दुर्भाग्यवश यदि हिरण्यकशिपु आपका स्थान ग्रहण करता है, तो सब कुछ नष्ट हो जाएगा।

तात्पर्य : इस श्लोक में *द्विज गवां पारमेष्ठ्यम्* शब्द ब्राह्मणों, ब्राह्मण-संस्कृति तथा गायों की श्रेष्ठ स्थिति को सूचित करने वाले हैं। वैदिक संस्कृति में गायों तथा ब्राह्मणों का कल्याण अनिवार्य है। ब्राह्मण संस्कृति का विकास करने तथा गायों की सुरक्षा करने के समुचित प्रबन्ध के बिना, प्रशासन के सारे कार्य ध्वस्त हो जाएँगे। हिरण्यकशिपु कहीं ब्रह्मा का पद न पा ले इस भय से सारे देवता अत्यन्त उद्विग्न थे। हिरण्यकशिपु विख्यात दैत्य था और देवतागण यह जानते थे कि यदि दैत्यों तथा राक्षसों को यह उच्च पद मिल गया तो ब्राह्मण-संस्कृति तथा गौवों की सुरक्षा मिट्टी में मिल जाएगी। जैसाकि *भगवद्गीता* (५.२९) में कहा गया है—सबों के आदि स्वामी भगवान् कृष्ण हैं (*भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्*) अतएव भगवान् अच्छी तरह जानते हैं कि इस जगत में जीवों की भौतिक स्थिति को किस तरह सुधारा जाये। प्रत्येक ब्रह्माण्ड में भगवान् कृष्ण के प्रतिनिधि रूप में कार्य करने के लिए एक ब्रह्मा नियुक्त है, जिसकी पुष्टि *श्रीमद्भागवत* में हुई है (*तेने ब्रह्म हृदा य आदि-कवये*)। प्रत्येक ब्रह्माण्ड का प्रमुख स्रष्टा ब्रह्मा है, जो अपने शिष्यों तथा पुत्रों को वैदिक ज्ञान प्रदान करता है। प्रत्येक लोक में राजा या परम नियन्ता को ब्रह्मा का प्रतिनिधि होना चाहिए। अतएव यदि ब्रह्मा के पद पर कोई राक्षस या असुर आसीन हो जाये तो ब्रह्माण्ड की सारी व्यवस्था, विशेष रूप से ब्राह्मण-संस्कृति तथा

गायों की सुरक्षा, नष्ट हो जाएगी। सारे देवताओं को इस संकट की आशंका थी, अतएव वे सब ब्रह्माजी के पास यह प्रार्थना करने के लिए गये कि वे हिरण्यकशिपु की चाल को ध्वस्त करने के लिए तुरन्त कदम उठाएँ।

सृष्टि के प्रारम्भ में ब्रह्माजी पर मधु तथा कैटभ नामक दो असुरों ने आक्रमण किया था, किन्तु कृष्ण ने उन्हें बचा लिया था। अतएव कृष्ण को *मधुकैटभहन्तृ* कहा जाता है। अब पुनः हिरण्यकशिपु ब्रह्मा का स्थान लेने वाला था। भौतिक जगत इस तरह स्थित है कि ब्रह्मा तक का पद कभी-कभी संकट में रहता है, तो सामान्य जीवों के विषय में क्या कहा जाये? तो भी हिरण्यकशिपु के समय तक किसी ने ब्रह्मा का स्थान ग्रहण करने का यत्न नहीं किया था। किन्तु हिरण्यकशिपु इतना महान् दैत्य था कि वह अपनी इच्छा पूरी करने पर अटल था।

भूत्यै शब्द का अर्थ है “ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए” और श्रेयसे शब्द अन्ततोगत्वा भगवद्धाम वापस जाने का द्योतक है। आध्यात्मिक उन्नति से मनुष्य के भौतिक पद में उन्नति के साथ-साथ मोक्ष का मार्ग भी स्पष्ट होता जाता है और वह भव-बन्धन से छूट जाता है। यदि कोई आध्यात्मिक उन्नति में ऐश्वर्यवान् पद पर हो तो उसका ऐश्वर्य कभी नहीं घटता। अतएव ऐसा आध्यात्मिक वरदान भूति या विभूति कहलाता है। इसकी पुष्टि कृष्ण ने *भगवद्गीता* (१०.४१) में की है। *यद् यद् विभूतिमत्सत्त्वं... मम तेजोऽशसम्भवम्*—यदि भक्त आध्यात्मिक चेतना में उन्नति करता है और इस तरह वह भौतिक दृष्टि से ऐश्वर्यवान् भी बन जाता है, तो उसका पद भगवान् का विशिष्ट वरदान होता है। ऐसे ऐश्वर्य को कभी भौतिक नहीं मानना चाहिए। इस समय इस धरा लोक में ब्रह्माजी का प्रभाव काफी घट चुका है और हिरण्यकशिपु के प्रतिनिधि राक्षसों तथा दैत्यों ने उनका स्थान ग्रहण कर लिया है। इसलिए ब्राह्मण-संस्कृति तथा गायों को कोई भी संरक्षण प्राप्त नहीं है, यद्यपि ये समस्त सौभाग्य के लिए अत्यावश्यक हैं। यह युग अत्यन्त घातक है, क्योंकि समाज का संचालन असुरों तथा राक्षसों के द्वारा हो रहा है।

इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नुप ।

परितो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; विज्ञापितः—सूचित; देवैः—समस्त देवताओं द्वारा; भगवान्—अत्यन्त शक्तिशाली; आत्म-भूः—कमल से उत्पन्न ब्रह्माजी; नृप—हे राजा; परितः—घिरा हुआ; भृगु—भृगु द्वारा; दक्ष—दक्ष से; आद्यैः—तथा अन्यो से; ययौ—गये; दैत्य-ईश्वर—दैत्यों के राजा हिरण्यकशिपु के; आश्रमम्—तपस्या स्थल पर।

हे राजा, देवताओं द्वारा इस प्रकार सूचित किये जाने पर अत्यन्त शक्तिशाली ब्रह्माजी भृगु, दक्ष तथा अन्य महर्षियों को साथ लेकर तुरन्त उस स्थान के लिए चल पड़े जहाँ हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था।

तात्पर्य : ब्रह्माजी प्रतीक्षा में थे कि हिरण्यकशिपु की तपस्या पूरी हो ले तो वे वहाँ जाकर उसकी इच्छानुसार उसे वर दे सकें। अब वे समस्त देवताओं तथा बड़े-बड़े साधु पुरुषों को साथ लेकर जाने का अवसर पा कर उसे इच्छित वर देने गये।

न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ।

पिपीलिकाभिराचीर्णं मेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ १५ ॥

तपन्तं तपसा लोकान्यथाभ्रापिहितं रविम् ।

विलक्ष्य विस्मितः प्राह हंसस्तं हंसवाहनः ॥ १६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; ददर्श—देखा; प्रतिच्छन्नम्—आवृत, ढका हुआ; वल्मीक—बाँबी; तृण—घास; कीचकैः—तथा बाँस के डंडे से; पिपीलिकाभिः—चींटियों द्वारा; आचीर्णम्—चारों ओर से खाया हुआ; मेदः—जिसकी चर्बी; त्वक्—चमड़ी; मांस—मांस; शोणितम्—तथा रक्त; तपन्तम्—तपाता हुआ; तपसा—कठिन तपस्या से; लोकान्—तीनों लोकों को; यथा—जिस तरह; अभ्र—बादलों से; अपिहितम्—आच्छादित; रविम्—सूर्य को; विलक्ष्य—देखकर; विस्मितः—आश्चर्य-चकित; प्राह—कहा; हसन्—हँसते हुए; तम्—उसको; हंस-वाहनः—हंस यान पर आसीन ब्रह्माजी ने।

हंसयान पर चलने वाले ब्रह्माजी पहले तो यह नहीं देख पाये कि हिरण्यकशिपु कहाँ है, क्योंकि उसका शरीर बाँबी, घास तथा बाँस के डंडों से आच्छादित था। चूँकि हिरण्यकशिपु दीर्घकाल से वहाँ था अतएव चींटियाँ उसकी खाल, चर्बी, मांस तथा रक्त चट कर चुकी थीं। तब ब्रह्माजी तथा देवताओं ने उसे खोज निकाला। वह बादलों से आच्छादित सूर्य की भाँति सारे संसार को अपनी तपस्या से तपा रहा था। आश्चर्यचकित होकर ब्रह्माजी हंस पड़े और उसे इस प्रकार सम्बोधित करने लगे।

तात्पर्य : प्राणी अपनी त्वचा, मज्जा, अस्थि, रक्त इत्यादि के बिना केवल निजी शक्ति से जीवित रह सकता है, क्योंकि यह कहा गया है असङ्गोऽयं पुरुषः—प्राणी (जीव) को भौतिक आवरण से कुछ भी लेना देना नहीं रहता। हिरण्यकशिपु ने अनेक वर्षों तक कठिन तपस्या की थी। निस्सन्देह, कहा जाता है कि उसने एक सौ दैवी वर्षों तक तपस्या की। चूँकि देवताओं का एक दिन हमारे छः मासों के

बराबर होता है, अतएव यह अत्यन्त दीर्घ समय था। प्रकृति के अपने ढंग से उसके शरीर को केंचुओं, चींटियों तथा परजीवियों ने लगभग खा लिया था और इसलिए ब्रह्मा भी पहले उसे नहीं देख पाये। किन्तु बाद में ब्रह्मा जान गये कि हिरण्यकशिपु कहाँ पर था और वे उसकी तपस्या की अद्भुत शक्ति को देखकर आश्चर्यचकित रह गये। उस समय कोई भी यह निष्कर्ष निकालता कि हिरण्यकशिपु मृत हो चुका था, क्योंकि उसका शरीर पूरी तरह से आच्छादित हो चुका था। लेकिन इस ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा समझ गये कि हिरण्यकशिपु जीवित है किन्तु भौतिक तत्त्वों द्वारा आच्छादित हो गया है।

यहाँ इस ओर भी ध्यान देना चाहिए कि यद्यपि हिरण्यकशिपु ने वर्षों तक लगातार यह तपस्या की थी फिर भी वह दैत्य तथा राक्षस के रूप में ही विख्यात था। अगले श्लोकों से पता चल जाएगा कि इस प्रकार की कठिन तपस्या बड़े से बड़े साधु पुरुष भी नहीं कर सकते। तो फिर वह राक्षस तथा दैत्य क्यों कहलाता था? इसका कारण यह था कि उसने जो भी किया वह सब अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए किया था। उसका पुत्र प्रह्लाद अभी केवल पाँच वर्ष का था अतएव वह कर ही क्या सकता था? फिर भी नारद मुनि के उपदेशों के अनुसार केवल थोड़ीसी भक्ति करके वह भगवान् का इतना प्रिय बन गया कि वे उसे बचाने के लिए आये। जबकि हिरण्यकशिपु अपनी सारी तपस्या के बावजूद मारा गया। भक्ति तथा सिद्धि की अनेक विधियों में यही अन्तर है। जो अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के लिए कठिन तपस्या करता है, वह समग्र संसार को डराता है, जबकि थोड़ी सी भक्ति करने वाला भक्त हर एक का मित्र होता है (*सुहृदं सर्वभूतानाम्*)। चूँकि भगवान् प्रत्येक जीव के शुभचिन्तक हैं और चूँकि भक्त भगवान् के गुण प्राप्त कर लेता है, अतएव भक्त भी भक्ति के द्वारा हर एक के कल्याण के लिए कर्म करता है। इस प्रकार यद्यपि हिरण्यकशिपु ने ऐसी कठिन तपस्या की थी, किन्तु वह दैत्य तथा राक्षस ही बना रहा जबकि उसी दैत्य पिता से उत्पन्न प्रह्लाद महाराज अत्यन्त सम्मानित भक्त बन गये जिससे स्वयं भगवान् ने उनकी रक्षा की। इसीलिए भक्ति सर्वोपाधि *विनिर्मुक्तम्* कहलाती है, जिससे सूचित होता है कि भक्त समस्त भौतिक उपाधियों से मुक्त हो जाता है और वह *अन्याभिलाषिताशून्यम्* अर्थात् समस्त भौतिक इच्छाओं से मुक्त होकर दिव्य पद पर स्थित होता है।

श्रीब्रह्मोवाच

उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप ।

वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ १७ ॥

शब्दार्थ

श्री-ब्रह्मा उवाच—ब्रह्माजी ने कहा; उत्तिष्ठ—उठो; उत्तिष्ठ—उठो; भद्रम्—कल्याण हो; ते—तुम्हारा; तपः-सिद्धः—तपस्या करने में पूर्ण; असि—तुम हो; काश्यप—हे कश्यप पुत्र; वर-दः—वर देने वाला; अहम्—मैं; अनुप्राप्तः—आया हूँ; व्रियताम्—माँग लो; ईप्सितः—वांछित; वरः—वरदान।

ब्रह्माजी ने कहा : हे कश्यप मुनि के पुत्र, उठो, उठो, तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम अपनी तपस्या में सिद्ध हो चुके हो, अतएव मैं तुम्हें वरदान देता हूँ। तुम मुझसे जो चाहे सो माँग सकते हो और मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करने का प्रयत्न करूँगा।

तात्पर्य : श्रील मध्वाचार्य ने स्कंद पुराण से उद्धरण दिया है, जिसके अनुसार हिरण्यकशिपु हिरण्यगर्भ कहलाने वाले ब्रह्माजी का भक्त बनकर तथा उन्हें प्रसन्न करने के लिए कठिन तपस्या करके स्वयं हिरण्यक भी कहलाता है। राक्षस तथा असुरगण ब्रह्मा तथा शिव जैसे विविध देवताओं की पूजा इन देवताओं का स्थान ग्रहण करने के लिए करते हैं। इसकी व्याख्या हम पिछले श्लोकों में कर चुके हैं।

अद्राक्षमहमेतं ते हत्सारं महदद्भुतम् ।
दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

अद्राक्षम्—स्वयं देखा है; अहम्—मैंने; एतम्—यह; ते—तुम्हारी; हत्-सारम्—सहन शक्ति; महत्—अत्यधिक; अद्भुतम्—आश्चर्यजनक; दंश-भक्षित—कीड़ों तथा चीटियों से खायी हुई; देहस्य—देह का; प्राणाः—प्राण, प्राणवायु; हि—निस्सन्देह; अस्थिषु—हड्डियों में; शेरते—शरण ले रहा है।

मैं तुम्हारे धैर्य को देखकर अत्यन्त विस्मित हूँ। सभी तरह के कीड़ों तथा चीटियों द्वारा खाये तथा काटे जाने के बावजूद तुम अपनी अस्थियों में प्राणवायु को संचालित किये हुए हो। निस्सन्देह, यह आश्चर्यजनक है।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मा का अस्तित्व अस्थियों में भी हो सकता है जैसाकि हिरण्यकशिपु के निजी उदाहरण से दर्शित होता है। जब बड़े-बड़े योगी समाधि में रहते हैं, तो उनके शरीर भूमि में गड़े रहने पर उनकी खाल, मज्जा, रक्त इत्यादि खाये जाने पर भी, यदि उनकी हड्डियाँ बची रहती हैं, तो वे दिव्य पद पर विद्यमान रह सकते हैं। हाल ही में एक पुरातत्वविद ने अपनी खोज प्रकाशित की है, जिसमें सूचित किया गया है कि भूमि में गाड़े जाने के बाद क्राइस्ट को खोद निकाला गया और तब वे कश्मीर गये। योगियों के ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जब वे समाधि में गाड़ दिये

गये और कई घंटों के बाद अच्छी अवस्था में जीवित निकाल लिए गये। योगी अपने को दिव्य अवस्था में जीवित रख सकता है भले ही उसे कई दिनों के लिए क्या वर्षों तक क्यों न गाड़ कर रखा जाये।

नैतत्पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ।

निरम्बुर्धारयेत्प्राणान्को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एतत्—यह; पूर्व—ऋषयः—तुम्हारे पहले के ऋषि यथा भृगु ने; चक्रुः—सम्पन्न किया; न—न तो; करिष्यन्ति—करेंगे; च—भी; अपरे—अन्य लोग; निरम्बुः—जल पिये बिना; धारयेत्—जीवित रख सकते हैं; प्राणान्—प्राण वायु को; कः—कौन; वै—निस्सन्देह; दिव्य-समाः—दैवी वर्ष; शतम्—एक सौ।

यहाँ तक कि भृगु जैसे साधु पुरुष, जो पहले जन्म ले चुके हैं ऐसी कठिन तपस्या नहीं कर सके हैं, न भविष्य में भी कोई ऐसा कर सकेगा। इस तीनों लोकों में ऐसा कौन होगा जो जल पिये बिना एक सौ दैवी वर्षों तक जीवन धारण कर सके ?

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि यदि योगी पानी की एक बूँद भी न पिये तो वह योग विधि से अनेकानेक वर्षों तक जीवित रह सकता है भले ही उसके बाह्य शरीर को चींटियाँ तथा कीड़े-मकोड़े खा जाँय।

व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ।

तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥ २० ॥

शब्दार्थ

व्यवसायेन—संकल्प से; ते—तुम्हारा; अनेन—इस; दुष्करेण—दुष्कर; मनस्विनाम्—बड़े-बड़े ऋषियों तथा साधु पुरुषों के लिए भी; तपः-निष्ठेन—तपस्या करने के उद्देश्य से; भवता—तुम्हारे द्वारा; जितः—जीता गया; अहम्—मैं; दिति-नन्दन—हे दिति पुत्र।

हे दितिपुत्र, तुमने अपने महान् संकल्प से तथा अपनी तपस्या से वह कर दिखाया है, जो बड़े-बड़े साधु पुरुषों के लिए भी दुष्कर है। इस तरह तुमने मुझे निश्चय ही जीत लिया है।

तात्पर्य : जितः शब्द के विषय में श्रील मध्व मुनि शब्द निर्णय से निम्नलिखित उदाहरण देते हैं—
पराभूतं वशस्थं च जितभिद् उच्यते बुधैः—यदि कोई किसी के वश में हो जाता है या दूसरे द्वारा पराजित हो जाता है, तो वह जितः कहलाता है। हिरण्यकशिपु की तपस्या इतनी महान् तथा अद्भुत थी कि ब्रह्माजी को भी अपने को उससे पराजित हुआ स्वीकार करना पड़ा।

ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव ।
मर्तस्य ते ह्यमर्तस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

ततः—इसके कारण; ते—तुमको; आशिषः—वरदान; सर्वाः—सभी; ददामि—दूँगा; असुर-पुङ्गव—हे असुरों में श्रेष्ठ; मर्तस्य—मरने वाले का; ते—तुम्हारी तरह; हि—निस्सन्देह; अमर्तस्य—न मरने वाले का; दर्शनम्—दर्शन; न—नहीं; अफलम्—बिना फल के; मम—मेरा ।

हे असुरों में श्रेष्ठ, इस कारण मैं तुम्हारी इच्छानुसार तुम्हें सारे वरदान देने के लिए तैयार हूँ। मैं देवताओं के दैवी संसार से सम्बन्धित हूँ, जहाँ देवतागण मनुष्यों की तरह नहीं मरते। अतएव यद्यपि तुम मर्त्य हो, किन्तु तुमने मेरा दर्शन किया है, अतः यह व्यर्थ नहीं जाएगा।

तात्पर्य : ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य तथा असुर तो मर्त्य हैं, किन्तु देवता नहीं हैं। जो देवता ब्रह्माजी के साथ सत्य लोक में रहते हैं, वे अपने शरीरपात के समय वर्तमान देहों सहित वैकुण्ठ लोक को जाते हैं। अतएव यद्यपि हिरण्यकशिपु ने कठिन तपस्या की थी, किन्तु ब्रह्मा ने भविष्यवाणी की कि उसे मरना होगा। वह न तो अमर हो सकता है, न देवताओं के समान पद पा सकता है। उसने इतने वर्षों तक जो महान् तप किया था उससे उसे मृत्यु से सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती थी। इसकी भविष्यवाणी ब्रह्मा द्वारा की जा चुकी थी।

श्रीनारद उवाच

इत्युक्त्वादिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ।
कमण्डलुजलेनौक्षद्विव्येनामोघराधसा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-नारदः उवाच—श्री नारद मुनि ने कहा; इति—इस प्रकार; उक्त्वा—कहकर; आदि-भवः—इस ब्रह्माण्ड का पहला जीवित प्राणी, ब्रह्माजी; देवः—प्रधान देवता; भक्षित-अङ्गम्—हिरण्यकशिपु का शरीर जो प्रायः खाया जा चुका था; पिपीलिकैः—चींटियों द्वारा; कमण्डलु—ब्रह्माजी के हाथ के जलपात्र से; जलेन—जल से; औक्षत्—छिड़का; दिव्येन—आध्यात्मिक, सामान्य नहीं; अमोघ—अचूक; राधसा—जिसकी शक्ति।

श्री नारद मुनि ने आगे कहा : हिरण्यकशिपु से ये शब्द कहने के बाद इस ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्माजी ने, जो अत्यन्त शक्तिमान हैं, उसके शरीर पर अपने कमण्डल से दिव्य अचूक आध्यात्मिक जल छिड़का, जिसे चींटियों तथा कीड़े-मकोड़ों ने खा लिया था। इस तरह उन्होंने हिरण्यकशिपु को जीवित किया।

तात्पर्य : इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्माजी प्रथम जीव हैं जिन्हें सृष्टि करने की शक्ति परमेश्वर द्वारा प्राप्त है।

तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये—आदि देव या आदि कवि अर्थात् प्रथम सजीव प्राणी को भगवान् ने स्वयं हृदय के भीतर से शिक्षा दी थी। उसे शिक्षा देने वाला कोई न था, किन्तु चूँकि ब्रह्माजी के हृदय में स्थित हैं, अतएव ब्रह्मा को साक्षात् भगवान् ने शिक्षा दी। ब्रह्माजी विशेष रूप से शक्त्याविष्ट होने के कारण वे जो चाहते हैं उसे करने में अचूक हैं। अमोघ राधसा शब्द का अर्थ यही है। वे हिरण्यकशिपु के मूल शरीर को जीवनदान देना चाहते थे; अतएव उन्होंने अपने कमण्डल से दिव्य जल छिड़कर उन्होंने यह कार्य तुरन्त कर डाला।

स तत्कीचकवल्मीकात्सहओजोबलान्वितः ।
सर्वावयवसम्पन्नो वज्रसंहननो युवा ।
उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

सः—वह हिरण्यकशिपु; तत्—उस; कीचक-वल्मीकात्—बाँबी तथा बाँस के कुंज से; सहः—मानसिक शक्ति; ओजः—इन्द्रिय शक्ति; बल—तथा पर्याप्त शारीरिक शक्ति से; अन्वितः—युक्त; सर्व—समस्त; अवयव—शरीर के अंग; सम्पन्नः—पूर्णतया फिर से पाकर; वज्र-संहननः—वज्र के समान मजबूत शरीर वाला; युवा—तरुण; उत्थितः—उठा हुआ; तप्त-हेम-आभः—जिसके शरीर की कान्ति पिघले सोने के समान थी; विभावसुः—अग्नि; इव—सदृश; एधसः—काष्ठ से।

ज्योंही ब्रह्मा ने अपने कमण्डल से उसके शरीर पर जल छिड़का त्योंही हिरण्यकशिपु उठ बैठा। उसके शरीर के अंग-प्रत्यंग इतने बलवान् थे कि वह वज्र के आघात को भी सहन कर सकता था। इतनी शारीरिक शक्ति एवं पिघले सोने की सी शारीरिक कान्ति से युक्त वह पूर्ण तरुण पुरुष की भाँति बाँबी से उसी तरह प्रकट हुआ जिस तरह काष्ठ से अग्नि उत्पन्न होती है।

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु को पुनः जीवन प्राप्त हुआ तो उसका शरीर इतना बलिष्ठ था कि वह वज्र के आघात को भी सहन कर सकता था। अब वह अत्यन्त बलिष्ठ शरीर वाला तरुण पुरुष था और उसके सुन्दर शरीर की आभा पिघले सोने जैसी थी। यह कायाकल्प उसकी कठोर तपस्या का परिणाम था।

स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमुपस्थितम् ।
ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

सः—उसने (हिरण्यकशिपु ने); निरीक्ष्य—देखकर; अम्बरे—आकाश में; देवम्—परम देवता; हंस-वाहम्—हंस-वायुयान पर चढ़ने वाला; उपस्थितम्—अपने समक्ष स्थित; ननाम—नमस्कार किया; शिरसा—शिर के बल; भूमौ—भूमि पर; तत्-दर्शन—ब्रह्माजी का दर्शन कर के; महा-उत्सवः—अत्यन्त प्रसन्न।

आकाश में हंस-वायुयान पर सवार ब्रह्मा को अपने समक्ष देखकर हिरण्यकशिपु अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वह तुरन्त शिर के बल भूमि पर गिर पड़ा और भगवान् के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने लगा।

तात्पर्य : भगवद्गीता (९.२३-२४) में भगवान् कृष्ण कहते हैं—

येऽप्यन्यदेवताभक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।

तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ।

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते ॥

“हे कुन्तीपुत्र! मनुष्य अन्य देवों को जो भी कुछ चढ़ाता है, वह वास्तव में मेरे लिए ही होता है, किन्तु वह बिना सही ज्ञान के चढ़ाया जाता है। मैं ही एकमात्र भोक्ता हूँ और यज्ञ का एकमात्र स्वामी हूँ। जो लोग मेरे दिव्य स्वभाव को वास्तव में नहीं जानते वे पतित होते हैं।”

वास्तव में, कृष्ण कहते हैं “जो लोग देवताओं की पूजा में लगे रहते हैं, वे बहुत बुद्धिमान नहीं होते, यद्यपि अप्रत्यक्ष रूप में यह मेरी ही पूजा है।” उदाहरणार्थ, जब कोई व्यक्ति वृक्ष की जड़ों में पानी न डालकर वृक्ष की टहनियों तथा पत्तों में जल डालता है, तो वह पर्याप्त ज्ञान के अभाव में या अनुष्ठानों का पालन किये बिना ही ऐसा करता है। वृक्ष को जल देने की विधि है कि उसकी जड़ों में पानी डाला जाये। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों की सेवा करने की विधि है पेट में भोजन डालना। एक तरह से सारे देवता परमेश्वर की सरकार के विभिन्न अफसर तथा निदेशक हैं। मनुष्य को सरकार द्वारा निर्मित कानून का पालन करना होता है न कि अफसरों या निदेशकों द्वारा निर्मित कानूनों का। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति को केवल परमेश्वर की पूजा करनी होती है। इससे भगवान् के विभिन्न अफसर तथा निदेशक स्वतः प्रसन्न हो लेंगे। सारे अफसर तथा निदेशक तो सरकार के प्रतिनिधि हैं और इनमें से किसी को भी घूस देना अवैध है। भगवद्गीता में इसे *अविधिपूर्वकम्* कहा गया है। दूसरे शब्दों में, कृष्ण देवताओं की अनावश्यक पूजा की अनुमति नहीं देते।

भगवद्गीता में यह स्पष्ट कहा गया है कि वैदिक साहित्य में अनेक प्रकार के यज्ञ सम्पन्न करने की संस्तुति की गई है, किन्तु वास्तव में वे सब परमेश्वर को प्रसन्न करने के लिए हैं। यज्ञ का अर्थ है

विष्णु। *भगवद्गीता* के तृतीय अध्याय में स्पष्ट कहा गया है कि मनुष्य को चाहिए कि यज्ञ अथवा विष्णु को प्रसन्न करने के लिए ही कर्म करे। मानव सभ्यता का पूर्ण रूप, जो वर्णाश्रम धर्म के नाम से जाना जाता है, विष्णु को प्रसन्न करने के ही निमित्त है। अतएव कृष्ण कहते हैं “मैं समस्त यज्ञों का भोक्ता हूँ क्योंकि मैं ईश्वर हूँ। किन्तु अल्पज्ञ इस तथ्य को न जानते हुए क्षणिक लाभ के लिए देवताओं की पूजा करते हैं। अतएव वे इस भौतिक संसार में आ गिरते हैं और जीवन के इच्छित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाते।” किन्तु यदि किसी को कोई भौतिक इच्छा पूरी करनी है, तो अच्छा हो कि वह इसके लिए परमेश्वर से प्रार्थना करे (यद्यपि यह शुद्ध भक्ति नहीं है) और इस तरह उसे वांछित फल प्राप्त होगा।

यद्यपि हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी को नमस्कार किया, किन्तु वह विष्णु के प्रति अत्यधिक शत्रुता रखता था। यह असुर का लक्षण है। असुरगण देवताओं की पूजा भगवान् से भिन्न होने के रूप में करते हैं और वे यह नहीं जानते कि सारे देवता भगवान् के दास होने के कारण ही शक्तिशाली होते हैं। यदि भगवान् देवताओं से शक्ति छीन लें तो देवतागण अपने उपासकों को वरदान न दे सकें। एक भक्त तथा असुर में यही अन्तर होता है कि भक्त यह जानता रहता है कि विष्णु भगवान् हैं और सभी लोग उनसे शक्ति प्राप्त करते हैं। एक भक्त विशेष शक्तियों के लिए देवताओं की पूजा न करके भगवान् विष्णु की पूजा यह जानते हुए करता है कि यदि उसे किसी शक्ति की आवश्यकता होगी तो वह विष्णु के भक्त के रूप में कर्म करता हुआ प्राप्त कर लेगा। अतएव शास्त्र (*भागवत* २.३.१०) में यह संस्तुति की गई है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ।

तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥

“जो व्यक्ति व्यापक बुद्धि का होता है, वह चाहे भौतिक इच्छाओं से युक्त हो, या उनसे मुक्त हो अथवा मुक्ति चाहता हो उसे सभी तरह से परम पूर्ण भगवान् की पूजा करनी चाहिए।” यदि मनुष्य भौतिक इच्छाओं से पूर्ण भी हो तो भी उसे देवताओं की पूजा न करके परमेश्वर की पूजा करनी चाहिए। इससे परमेश्वर के साथ उसका सम्बन्ध स्थापित होगा और वह असुर या अभक्त बनने से बच जायेगा। इस प्रसंग में श्रील मध्वाचार्य *ब्रह्म-तर्क* से निम्नलिखित उदाहरण देते हैं—

एकस्थानैककार्यत्वाद् विष्णोः प्राधान्यतस्तथा ।

जीवस्य तदधीनत्वात् भिन्नाधिकृतं वचः ॥

चूँकि विष्णु सर्वश्रेष्ठ हैं अतएव उनकी पूजा द्वारा मनुष्य की सारी इच्छाएँ पूरी हो सकती हैं। उसे किसी अन्य देवता की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है।

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ।
हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयागृणात् ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

उत्थाय—उठकर; प्राञ्जलिः—हाथ जोड़े; प्रह्वः—विनीत भाव से; ईक्षमाणः—देखते हुए; दृशा—अपनी आँखों से; विभुम्—इस ब्रह्माण्ड के भीतर परम पुरुष को; हर्ष—प्रसन्नता के; अश्रु—आँसुओं से; पुलक—शरीर में रोमांच; उद्भेदः—सजीव; गिरा—शब्दों से; गद्गदया—रुक-रुक कर; अगृणात्—प्रार्थना की।

तब दैत्यराज भूमि से उठकर एवं ब्रह्माजी को अपने समक्ष देखकर प्रसन्नता से अभिभूत हो गया। वह अश्रुपूर्ण नेत्रों एवं कम्पित पुलकित शरीर से अपने हाथ जोड़कर तथा अवरुद्ध वाणी से ब्रह्माजी को प्रसन्न करने के लिए विनीत मुद्रा में प्रार्थना करने लगा।

श्रीहिरण्यकशिपुरुवाच

कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसावृतम् ।
अभिव्यनग्जगदिदं स्वयञ्ज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २६ ॥
आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ।
रजःसत्त्वतमोधाप्ने पराय महते नमः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

श्री-हिरण्यकशिपुः उवाच—हिरण्यकशिपु ने कहा; कल्प-अन्ते—ब्रह्माजी के प्रत्येक दिन के अन्त में; काल-सृष्टेन—काल (समय) द्वारा सृजित; यः—जो; अन्धेन—घने अंधकार से; तमसा—अज्ञान से; आवृतम्—ढका हुआ; अभिव्यनक्—प्रकट, व्यक्त; जगत्—विराट अभिव्यक्ति; इदम्—यह; स्वयम्-ज्योतिः—आत्म-तेज; स्व-रोचिषा—अपने शरीर की किरणों से; आत्मना—अपने से; त्रि-वृता—प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा संचालित; च—भी; इदम्—यह भौतिक जगत; सृजति—उत्पन्न करता है; अवति—पालन करना है; लुम्पति—संहार करता है; रजः—रजोगुण का; सत्त्व—सतोगुण; तमः—तथा तमोगुण का; धाम्ने—परम स्वामी को; पराय—परम को; महते—महान् को; नमः—मेरा सादर नमस्कार।

“मैं इस ब्रह्माण्ड के परम स्वामी को सादर नमस्कार करता हूँ। उनके जीवन के प्रत्येक दिन के अन्त में यह ब्रह्माण्ड काल के प्रभाव से घने अंधकार द्वारा आच्छादित हो जाता है और दूसरे दिन पुनः वही आत्म-तेजस्वी स्वामी अपने निजी तेज से अपनी भौतिक शक्ति के माध्यम से, जो प्रकृति के तीन गुणों से युक्त है, सम्पूर्ण जगत का सृजन, पालन तथा संहार करता है। वे ब्रह्माजी ही सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण—इन तीन प्रकृति के गुणों के आधार हैं।”

तात्पर्य : अभिव्यनग् जगद् इदम् शब्द इस विराट जगत को उत्पन्न करने वाले के लिए आये हैं।

आदि स्रष्टा भगवान् कृष्ण हैं (*जन्माद्यस्य यतः*), ब्रह्माजी तो गौण स्रष्टा हैं। जब भगवान् कृष्ण द्वारा ब्रह्माजी को शिल्पी के रूप में व्यवहार जगत की सृष्टि करने के लिए शक्ति प्रदान की जाती है, तो वे इस ब्रह्माण्ड के परम शक्तिशाली स्वरूप बन जाते हैं। सम्पूर्ण भौतिक शक्ति कृष्ण द्वारा उत्पन्न की जाती है और बाद में इस शक्ति का लाभ उठाकर ब्रह्मा समग्र व्यवहार-जगत का शिल्पन करते हैं। ब्रह्माजी के दिन के अन्त में स्वर्ग लोक तक सारी वस्तुएँ जल से आप्लावित हो उठती हैं और अगले दिन प्रातःकाल जब ब्रह्माण्ड में अंधकार हो जाता है, तो ब्रह्माजी फिर से सृष्टि उत्पन्न करते हैं। अतएव उन्हें यहाँ पर ब्रह्माण्ड का आदि स्रष्टा कहा गया है।

त्रीन् गुणान् वृणोति—ब्रह्माजी प्रकृति के तीन गुणों का लाभ उठाते हैं। यहाँ पर प्रकृति को *त्रिवृता* कहा गया है अर्थात् वह तीन भौतिक गुणों की उद्गम है। इसकी टीका में श्रील मध्वाचार्य कहते हैं कि *त्रिवृता* का अर्थ *प्रकृत्या* है। भगवान् कृष्ण आदि स्रष्टा हैं और ब्रह्माजी आदि शिल्पी हैं।

नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ।

प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ; आद्याय—आदि जीव को; बीजाय—विराट विश्व के बीज को; ज्ञान—ज्ञान के; विज्ञान—व्यावहारिक ज्ञान के; मूर्तये—अर्चा विग्रह या स्वरूप को; प्राण—प्राणों के; इन्द्रिय—इन्द्रिय के; मनः—मन के; बुद्धि—बुद्धि के; विकारैः—रूपान्तरों से; व्यक्तिम्—अभिव्यक्ति; ईयुषे—जिसने प्राप्त कर लिया है।

“मैं इस ब्रह्माण्ड के आदि पुरुष ब्रह्माजी को नमस्कार करता हूँ जो ज्ञान विशेष हैं तथा जो इस विराट जगत को उत्पन्न करने में मन तथा अनुभूत बुद्धि का उपयोग कर सकते हैं। उनके कार्य-कलापों के ही कारण इस ब्रह्माण्ड में हर वस्तु दृष्टिगोचर हो रही है, अतएव वे समग्र अभिव्यक्तियों के कारण हैं।”

तात्पर्य : *वेदान्त सूत्र* का शुभारम्भ इस घोषणा से होता है कि परम पुरुष ही समस्त सृष्टि का आदि स्रोत हैं (*जन्माद्यस्य*)। कोई यह प्रश्न कर सकता है कि क्या ब्रह्माजी परम पुरुष हैं? नहीं। परम पुरुष तो कृष्ण हैं। ब्रह्मा कृष्ण से ही अपना मन, बुद्धि तथा अन्य सारी वस्तुएँ प्राप्त करते हैं और तब वे गौण स्रष्टा या इस ब्रह्माण्ड के शिल्पी बनते हैं। इस सम्बन्ध में हमें ध्यान रखना चाहिए कि सृष्टि संयोगवश विशाल पिंड के विस्फोट से उत्पन्न नहीं हुई। वैदिक जिज्ञासु ऐसे निरर्थक सिद्धान्तों को नहीं मानते। प्रथम उत्पन्न जीव तो ब्रह्मा हैं जिसे भगवान् ने पूर्ण ज्ञान तथा बुद्धि प्रदान की। जैसाकि *श्रीमद्भागवत* में

कहा गया है *तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये*—यद्यपि ब्रह्मा प्रथम उत्पन्न प्राणी हैं, लेकिन वे स्वतंत्र नहीं हैं, क्योंकि वे अपने हृदय में भगवान् की सहायता से बुद्धि प्राप्त करते हैं। सृष्टि के समय ब्रह्मा के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होता, अतएव वे भगवान् से प्रत्यक्ष रूप में हृदय के माध्यम से अपनी बुद्धि प्राप्त करते हैं। इसकी व्याख्या *श्रीमद्भागवत* के प्रारम्भ में की जा चुकी है।

इस श्लोक में ब्रह्माजी को विराट् जगत का आदि कारण कहा गया है। यह भौतिक जगत में उनके पद का सूचक है। ऐसे अनेक नियंत्रक हैं जिन सबों को परमेश्वर विष्णु ने उत्पन्न किया। इसका चित्रांकन *चैतन्य-चरितामृत* में वर्णित एक घटना में हुआ है। जब इस ब्रह्माण्ड विशेष के ब्रह्मा को कृष्ण ने द्वारका में आमंत्रित किया तो उन्होंने सोचा कि वे ही एकमात्र ब्रह्मा हैं। अतएव जब कृष्ण ने अपने नौकर से पूछा कि कौन से ब्रह्मा भेंट करने द्वार पर आये हैं, तो ब्रह्माजी को आश्चर्य हुआ। उसने उत्तर दिया कि चारों कुमारों के पिता ब्रह्माजी द्वार पर प्रतीक्षा कर रहे हैं। बाद में ब्रह्माजी ने कृष्ण से पूछा कि आपने यह क्यों पूछा था कि कौन से ब्रह्मा आये हैं। तो भगवान् ने बताया कि ऐसे लाखों ब्रह्मा हैं, क्योंकि ब्रह्माण्ड भी लाखों हैं। तब कृष्ण ने सारे ब्रह्माओं को बुलाया तो सारे ब्रह्मा तुरन्त उनसे भेंट करने गये। *चतुर्मुख* ब्रह्मा ने चार मुख होने के कारण उन अनेक ब्रह्माओं के मध्य अपने को अत्यन्त तुच्छ प्राणी समझा जिनके अनेक मुख थे। इस प्रकार प्रत्येक ब्रह्माण्ड का एक शिल्पी ब्रह्मा होता है और कृष्ण उन सबों के आदि स्रोत हैं।

त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च

प्राणेन मुखेन पतिः प्रजानाम् ।

चित्तस्य चित्तैर्मनइन्द्रियाणां

पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; ईशिषे—वास्तविक नियंत्रण करते हो; जगतः—चल प्राणियों का; तस्थुषः—एक स्थान पर स्थिर रहने वालों का; च—तथा; प्राणेन—प्राण से; मुखेन—समस्त कार्यकलापों का उद्गम; पतिः—स्वामी; प्रजानाम्—समस्त जीवों का; चित्तस्य—मन का; चित्तैः—चेतना से; मनः—मन का; इन्द्रियाणाम्—तथा दो प्रकार की इन्द्रियों (कर्मेन्द्रियाँ तथा ज्ञानेन्द्रियाँ) का; पतिः—स्वामी; महान्—महान्; भूत—भौतिक तत्त्वों का; गुण—तथा भौतिक तत्त्वों के गुण; आशय—इच्छाओं का; ईशः—परम स्वामी।

“आप ही इस भौतिक जगत के जीवन के उद्गम होने से चर तथा अचर दोनों प्रकार के जीवों के स्वामी तथा नियन्ता हैं और उनकी चेतना को प्रेरित करते रहते हैं। आप मन और कर्म

तथा ज्ञान की इन्द्रियों को धारण करते हैं अतएव आप समस्त भौतिक तत्त्वों तथा उनके गुणों के महान् नियन्ता हैं। आप समस्त इच्छाओं के भी नियन्ता हैं।”

तात्पर्य : इस श्लोक में स्पष्ट इंगित किया गया है कि प्रत्येक वस्तु का मूल स्रोत जीवन है। ब्रह्मा को परम पुरुष कृष्ण ने उपदेश दिया था। कृष्ण परम पुरुष हैं (*नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानाम्*) और ब्रह्मा भी जीव हैं लेकिन ब्रह्मा के मूल स्रोत कृष्ण ही हैं। अतएव *भगवद्गीता* (७.७) में कृष्ण कहते हैं—*मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनञ्जय*—“हे अर्जुन! मुझसे श्रेष्ठ सत्य कोई नहीं है।” कृष्ण ब्रह्माजी के मूल स्रोत हैं, जो इस ब्रह्माण्ड के मूल स्रोत हैं। ब्रह्माजी कृष्ण के प्रतिनिधि हैं, अतएव कृष्ण के सारे गुण तथा कार्यकलाप ब्रह्माजी में भी पाये जाते हैं।

त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा

त्रय्या चतुर्होत्रकविद्यया च ।

त्वमेक आत्मात्मवतामनादि-

रनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; सप्त-तन्तून्—सात प्रकार के वैदिक अनुष्ठान, जिनमें पहला है अग्निष्टोम यज्ञ; वितनोषि—फैलाते हो; तन्वा—अपने शरीर से; त्रय्या—तीन वेद; चतुः-होत्रक—चार प्रकार के पुरोहित जो होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा और उद्गाता कहलाते हैं; विद्यया—आवश्यक ज्ञान द्वारा; च—भी; त्वम्—तुम; एकः—एक; आत्मा—परमात्मा; आत्म-वताम्—सारे जीवों का; अनादिः—आदिरहित; अनन्त-पारः—अन्तहीन; कविः—परम प्रेरक; अन्तः-आत्मा—हृदय के भीतर स्थिर परमात्मा।

“हे प्रभु, आप साक्षात् वेदों के रूप में तथा समस्त याज्ञिक ब्राह्मणों के कार्यकलापों से सम्बन्धित ज्ञान के द्वारा अग्निष्टोम इत्यादि सात प्रकार के यज्ञों के वैदिक अनुष्ठानों का विस्तार करते हैं। निस्सन्देह, आप याज्ञिक ब्राह्मणों को तीनों वेदों में उल्लिखित अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के लिए प्रेरित करते हैं। समस्त जीवों की अन्तरात्मा होने से आप आदिरहित, अन्तरहित तथा सर्वज्ञ हैं, आप काल तथा देश की सीमाओं के परे हैं।”

तात्पर्य : वैदिक अनुष्ठान, उनका ज्ञान तथा उनको सम्पन्न करने वाले व्यक्ति परमात्मा द्वारा प्रेरित होते हैं। जैसाकि *भगवद्गीता* में पुष्टि हुई है—*मत्तः स्मृतिर्ज्ञानपोहनं च*—भगवान् से ही स्मृति, ज्ञान तथा विस्मृति उत्पन्न होते हैं। परमात्मा हर एक के हृदय में स्थित है (*सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः, ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति*) और जब कोई वैदिक ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा होता है, तो परमात्मा उसे निर्देश देते हैं। परमात्मा के रूप में कार्य करते हुए भगवान् उपयुक्त व्यक्ति को वैदिक अनुष्ठानों को

सम्पन्न करने की प्रेरणा देते हैं जिन्हें ऋत्विक् कहते हैं। इसके लिए चार प्रकार के पुरोहितों को इसका उल्लेख होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा तथा उद्गाता के रूप में हुआ है।

त्वमेव कालोऽनिमिषो जनाना-

मायुर्लवाद्यवयवैः क्षिणोषि ।

कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महां-

स्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम, एक ही; एव—निश्चित; कालः—अनन्त समय; अनिमिषः—बिना पलक झ्रॉपे; जनानाम्—समस्त जीवों के; आयुः—आयु, उम्र; लव-आदि—सेकंड, पल, मिनट तथा घंटे आदि; अवयवैः—विभिन्न भागों से; क्षिणोषि—क्षीण करते हो, घटाते हो; कूट-स्थः—किसी से प्रभावित हुए बिना; आत्मा—परमात्मा; परमेष्ठी—परमेश्वर; अजः—अजन्मा; महान्—महान्; त्वम्—तुम; जीव-लोकस्य—इस भौतिक जगत का; च—भी; जीवः—जीवन का कारण; आत्मा—परमात्मा।

हे स्वामी, आप नित्य जागते रहते हैं और जो कुछ घटित होता है उसे देखते हैं। नित्य काल के रूप में आप अपने विभिन्न अंगों तथा क्षण, सेकंड, मिनट तथा घंटे से समस्त जीवों की आयु घटाते हैं फिर भी आप अपरिवर्तनशील हैं, एक ही साथ परमात्मा, साक्षी तथा अजन्मा, सर्वव्यापी नियन्ता हैं, जो समस्त जीवों के जीवन के कारण हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक में कूट-स्थ शब्द अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति—भगवान् प्रत्येक व्यक्ति के हृदय के भीतर विराजमान हैं। जैसाकि उपनिषदों में एकत्वम् शब्द से सूचित होता है यद्यपि जीव लाखों हैं लेकिन भगवान् परमात्मा रूप में उनमें से हर एक में स्थित हैं। फिर भी वे अनेक में एक हैं। जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है—अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूपम्—उनके अनेक रूप हैं, किन्तु वे अद्वैत—एक तथा अपरिवर्तित हैं। चूँकि भगवान् सर्वव्यापी हैं, अतएव वे नित्य काल में भी स्थित हैं। जीवों को भगवान् का भिन्नांश कहा जाता है, क्योंकि वे सभी जीवों के जीवन तथा आत्मा हैं और उनके हृदयों में अन्तर्यामी के रूप में स्थित रहते हैं जैसी कि अचिन्त्य भेदाभेद दर्शन की स्थापना है। चूँकि सारे जीव ईश्वर के अंश हैं, अतः वे गुणों में उनके समान होकर भी उनसे भिन्न होते हैं। परमात्मा समस्त जीवों को कर्म करने के लिए प्रेरित करता है, वह एक है और अव्यय है। यद्यपि विषयों तथा कार्यकलापों की अनेक किस्में हैं फिर भी भगवान् एक है।

त्वत्तः परं नापरमप्यनेज-

देजच्च किञ्चिद्व्यतिरिक्तमस्ति ।

विद्याः कलास्ते तनवश्च सर्वा

हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

त्वत्तः—तुमसे; परम्—उच्चतर; न—नहीं; अपरम्—निम्नतर; अपि—भी; अनेजत्—अचर; एजत्—चर; च—तथा; किञ्चित्—कोई वस्तु; व्यतिरिक्तम्—पृथक्; अस्ति—है; विद्याः—विद्या, ज्ञान; कलाः—अंश; ते—तुम्हारे; तनवः—शरीर के लक्षण; च—तथा; सर्वाः—सभी; हिरण्य-गर्भः—अपने उदर में ब्रह्माण्ड को रखने वाला; असि—तुम हो; बृहत्—बड़े से बड़ा; त्रि-पृष्ठः—प्रकृति के तीन गुणों से परे।

“आपसे पृथक् कुछ भी नहीं है चाहे वह अच्छा हो या निम्नतर, अचर या चर। वैदिक वाङ्मय से यथा उपनिषदों से तथा मूल वैदिक ज्ञान के उपायों से प्राप्त ज्ञान आपके बाह्य शरीर की रचना करने वाले हैं। आप हिरण्यगर्भ अर्थात् ब्रह्माण्ड के आगार हैं, लेकिन परम नियन्ता के रूप में स्थित होने से आप तीन गुणों से युक्त भौतिक जगत से परे हैं।

तात्पर्य : परम शब्द का अर्थ है “परम कारण” तथा अपरम् का अर्थ है “कार्य”। परम कारण तो भगवान् हैं और भौतिक प्रकृति कार्य है। चर तथा अचर दोनों प्रकार के जीव कला एवं विज्ञान विषयक वैदिक आदेशों से नियंत्रित होते हैं, अतएव वे सभी भगवान् की बहिरंगा शक्ति के विस्तार हैं, जो परमात्मा के रूप में केन्द्रित हैं। ब्रह्माण्डों का अस्तित्व परमेश्वर के श्वसनकाल तक रहता है (यस्यैकनिश्चितकालमथावलम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः)। इस प्रकार ये ब्रह्माण्ड भी भगवान् महाविष्णु के गर्भ के भीतर रहते हैं। अतएव कुछ भी भगवान् से पृथक् नहीं है। अचिन्य भेदाभेदतत्त्व का दर्शन यही है।

व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं

येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ।

भुङ्क्षे स्थितो धामनि पारमेष्ठ्ये

अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

व्यक्तम्—प्रकट; विभो—हे प्रभु; स्थूलम्—विराट अभिव्यक्ति; इदम्—यह; शरीरम्—बाह्य शरीर; येन—जिससे; इन्द्रियां—इन्द्रियाँ; प्राण—प्राण; मनः—मन; गुणान्—दिव्य गुण; त्वम्—तुम; भुङ्क्षे—भोग करते हो; स्थितः—स्थित; धामनि—अपने धाम में; पारमेष्ठ्ये—परम; अव्यक्तः—सामान्य ज्ञान से प्रकट न होने वाला; आत्मा—आत्मा; पुरुषः—परम पुरुष; पुराणः—आदि, सबसे प्राचीन।

हे प्रभु, आप अपने धाम में निरन्तर स्थित रह कर अपने विराट रूप को इस विराट जगत के भीतर से विस्तारित करते हैं और इस तरह आप भौतिक जगत का आस्वादन करते प्रतीत होते हैं।

आप ब्रह्म, परमात्मा, सबसे प्राचीन ईश्वर हैं।

तात्पर्य : कहा जाता है कि परम सत्य तीन रूपों में प्रकट होता है—निराकार ब्रह्म, अन्तर्यामी परमात्मा तथा भगवान् कृष्ण। यह विराट जगत भगवान् का स्थूल शरीर है, वे भौतिक रसों का आस्वादन अपने अंशों अर्थात् जीवों का विस्तार करके करते हैं। ये जीव गुणात्मक रूप से उनसे अभिन्न हैं। किन्तु भगवान् वैकुण्ठ लोक में स्थित हैं जहाँ वे आध्यात्मिक रसों का भोग करते हैं। अतएव एक परम सत्य भगवान् अपनी विराट अभिव्यक्ति द्वारा, अपने आध्यात्मिक ब्रह्मतेज द्वारा तथा परमेश्वर रूप में अपने साक्षात् अस्तित्व द्वारा सर्वत्र व्याप्त है।

अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ।

चिदचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

अनन्त-अव्यक्त-रूपेण—असीम, अप्रकट रूप द्वारा; येन—जिससे; इदम्—यह; अखिलम्—सम्पूर्ण; ततम्—विस्तारित; चित्—आध्यात्मिक; अचित्—भौतिक; शक्ति—शक्ति; युक्ताय—से युक्त; तस्मै—उस; भगवते—भगवान् को; नमः—मैं सादर नमस्कार करता हूँ।

मैं उन परमब्रह्म को नमस्कार करता हूँ जिन्होंने अपने अनन्त, अव्यक्त रूप को विराट जगत के रूप में ब्रह्माण्ड की समग्रता में विस्तार किया है। उनमें बहिरंगा शक्ति तथा अन्तरंगा शक्ति और समस्त जीवों से समन्वित मिश्रित तटस्था शक्ति पाई जाती है।

तात्पर्य : भगवान् अनन्त शक्तियों से युक्त हैं (परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते) जिन्हें बहिरंगा, अन्तरंगा तथा तटस्था के रूप में संक्षेप में बताया जाता है। बहिरंगा शक्ति से यह भौतिक जगत प्रकट होता है, अन्तरंगा शक्ति से आध्यात्मिक जगत और तटस्था शक्ति से सारे जीव प्रकट होते हैं। यह तटस्था शक्ति अन्तरंगा तथा बहिरंगा शक्ति का मिश्रण है। जीव परब्रह्म का अंश होने से वास्तव में अन्तरंगा शक्ति हैं, लेकिन बहिरंगा शक्ति के सम्पर्क में होने के कारण वे भौतिक एवं आध्यात्मिक शक्तियाँ का मिश्रित रूप हैं। भौतिक तथा आध्यात्मिक लीलाओं में लगे रहते हैं। भौतिक शक्ति उनकी लीलाओं की अभिव्यक्ति मात्र है।

यदि दास्यस्यभिमतान्वरान्मे वरदोत्तम ।

भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

यदि—यदि; दास्यसि—दोगे; अभिमतान्—वांछित; वरान्—वर; मे—मुझको; वरद-उत्तम—हे समस्त वरदायकों में श्रेष्ठ; भूतेभ्यः—जीवों से; त्वत्—तुमसे; विसृष्टेभ्यः—उत्पन्न किये गये; मृत्युः—मृत्यु; मा—नहीं; भूत्—हो; मम—मेरे; प्रभो—हे स्वामी।

हे प्रभो, हे श्रेष्ठ वरदाता, यदि आप मुझे मेरा मनचाहा वर देना ही चाहते हैं, तो यह वर दें कि मैं आपके द्वारा उत्पन्न किसी भी जीव के द्वारा मृत्यु को प्राप्त न होऊँ।

तात्पर्य : गर्भोदकशायी विष्णु की नाभि से उत्पन्न होकर ब्रह्माण्ड के प्रथम जीव ब्रह्मा ने इस संसार में रहने के लिए विभिन्न प्रकार के जीव उत्पन्न किये। अतएव सृष्टि के प्रारम्भ से सारे जीव एक श्रेष्ठ जीव से उत्पन्न हुए। अन्ततोगत्वा कृष्ण ही श्रेष्ठ जीव और अन्य सबों के जनक हैं। अहं बीजप्रदः पिता—वे समस्त जीवों के वीर्यदाता पिता हैं।

यहाँ तक हिरण्यकशिपु ने ब्रह्माजी की पूजा भगवान् के रूप में की और वह उनके वर से अमर होने की आशा करता रहा। किन्तु अब यह समझकर कि ब्रह्मा भी अमर नहीं हैं, क्योंकि कल्पान्त के समय वे भी मर जाएँगे, हिरण्यकशिपु अत्यन्त सतर्क होकर ऐसा वर माँग रहा है, जो अमरता के ही समकक्ष है। उसका पहला प्रस्ताव है कि वह इस भौतिक जगत के भीतर ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किसी भी प्रकार के जीव द्वारा न मारा जा सके।

नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ।

न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्न नरैर्न मृगैरपि ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; अन्तः—भीतर (घर या महल); बहिः—घर के बाहर; दिवा—दिन के समय; नक्तम्—रात्रि के समय; अन्यस्मात्—ब्रह्मा के परे अन्य किसी से; अपि—भी; च—भी; आयुधैः—इस जगत में प्रयुक्त होने वाले किसी भी हथियार से; न—न तो; भूमौ—भूमि पर; न—नहीं; अम्बरे—आकाश में; मृत्युः—मृत्यु; न—नहीं; नरैः—किसी मनुष्य द्वारा; न—न तो; मृगैः—किसी पशु द्वारा; अपि—भी।

मुझे यह वर दें कि मैं न तो घर के अन्दर, न घर के बाहर, न दिन के समय, न रात में, न भूमि पर, न आकाश में मरूँ। मुझे वर दें कि मेरी मृत्यु न तो आपके द्वारा उत्पन्न जीवों के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा हो, न किसी हथियार से हो, न किसी मनुष्य या पशु के द्वारा हो।

तात्पर्य : हिरण्यकशिपु को भय था कि कहीं विष्णु उसे पशु बनकर न मारें, क्योंकि उसके भाई का वध विष्णु ने वराह का रूप धारण करके किया था। अतएव वह सभी प्रकार के पशुओं से अत्यन्त चौकन्ना रहता था, लेकिन विष्णु किसी पशु का रूप धारण किये बिना ही अपना सुदर्शन चक्र चलाकर

उसे मार सकते थे, क्योंकि यह चक्र उनकी उपस्थिति बिना भी कहीं भी जा सकता था। इसीलिए हिरण्यकशिपु सभी प्रकार के हथियारों से अपनी रक्षा के प्रति चौकन्ना था। उसने सभी प्रकार के काल तथा देशों से सावधानी बरती, क्योंकि उसे भय था कि कोई अन्य देश में उसे मार न डाले। ऊपर तथा नीचे अनेक लोक हैं, अतएव उसने ऐसे वर के लिए प्रार्थना की जिससे वह इन लोकों में से किसी के निवासी द्वारा न मारा जा सके। आदि देवता तीन हैं—ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर। हिरण्यकशिपु जानता था कि ब्रह्माजी उसे नहीं मारेंगे, किन्तु वह यह भी चाहता था कि विष्णु या महेश्वर भी उसका वध न करें। अतएव उसने ऐसे वर के लिए प्रार्थना की। इस तरह हिरण्यकशिपु ने सोचा कि वह इस ब्रह्माण्ड के भीतर किसी भी जीव के द्वारा किसी भी तरह मृत्यु को प्राप्त नहीं हो सकेगा। उसने प्राकृतिक मृत्यु के प्रति भी सावधानी बरती, क्योंकि ऐसी मृत्यु घर के भीतर या बाहर हो सकती है।

व्यसुभिर्वासुमद्भिर्वासुरासुरमहोरगैः ।

अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥ ३७ ॥

सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः ।

तपोयोगप्रभावाणां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

व्यसुभिः—निर्जीव वस्तुओं द्वारा; वा—अथवा; असुमद्भिः—सजीवों द्वारा; वा—अथवा; सुर—देवताओं द्वारा; असुर—दैत्यों द्वारा; महा-उरगैः—अधोलोक में वास करने वाले बड़े-बड़े सर्पों द्वारा; अप्रतिद्वन्द्वताम्—जिसकी बराबरी करने वाला न हो; युद्धे—युद्ध में; ऐक-पत्यम्—श्रेष्ठता; च—तथा; देहिनाम्—भौतिक शरीरधारियों के ऊपर; सर्वेषाम्—सभी; लोक-पालानाम्—समस्त लोकों के प्रधान देवताओं का; महिमानम्—यश; यथा—जिस तरह; आत्मनः—आपका; तपः—योग-प्रभावाणाम्—उन सबों का जिन्हें तपस्या तथा योगाभ्यास द्वारा शक्ति प्राप्त होती है; यत्—जो; न—कभी नहीं; रिष्यति—नष्ट होती है; कर्हिचित्—कभी भी।

आप मुझे वर दें कि किसी सजीव या निर्जीव प्राणी द्वारा मेरी मृत्यु न हो। मुझे यह भी वर दें कि मैं किसी देवता या असुर द्वारा या अधोलोकों के किसी बड़े सर्प द्वारा न मारा जाऊँ। चूँकि आपको युद्धभूमि में कोई मार नहीं सकता इसलिए आपका कोई प्रतिद्वन्दी भी नहीं है। इसी प्रकार आप मुझे यह भी वर दें कि मेरा भी कोई प्रतिद्वन्दी न हो। मुझे सारे जीवों तथा लोकपालों का एकछत्र स्वामित्व प्रदान करें और उस पद से प्राप्त होने वाला समस्त यश दें। साथ ही मुझे लम्बी तपस्या तथा योगाभ्यास से प्राप्त होने वाली सारी योग शक्तियाँ दें, क्योंकि ये कभी भी विनष्ट नहीं हो सकतीं।

तात्पर्य : ब्रह्माजी को अपना श्रेष्ठ पद लम्बी तपस्या, योग, ध्यान आदि से प्राप्त हुआ था।

हिरण्यकशिपु ऐसा ही पद चाहता था। योग, तपस्या तथा अन्य विधियों से प्राप्त सामान्य शक्तियाँ कभी-कभी नष्ट हो जाती हैं, लेकिन भगवान् की कृपा से प्राप्त होने वाली शक्तियाँ कभी नष्ट नहीं होतीं। अतएव हिरण्यकशिपु ऐसा वर चाहता था, जो कभी समाप्त न हो।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के सातवें स्कंध के अन्तर्गत “अमर बनने की हिरण्यकशिपु की योजना” नामक तीसरे अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।